राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ

खंडपीठ विशेष अपील (रिट) संख्या 182/2019

में

एकलपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 3213/2015

1. श्री राजेश कूलवाल, उपध्याक्ष (कार्य)
2. श्री रोहित झालानी,
3. श्री आर.सी.सक्सेना, प्रबंधक (मानव संसाधन),

(मैसर्स के ई सी इंटरनेशनल लिमिटेड, झोटवाड़ा औद्योगिक क्षेत्र, जयपुर के माध्यम से)

----अपीलार्थीगण/गैर-याचिकाकर्ता

बनाम

1. शंकर लाल शर्मा पुत्र स्वर्गीय श्री ज्वालाराम जी शर्मा, निवासी ग्राम पोस्ट पैमपुर (प्रेमपुर) वाया जट्टारी जनपद, अलीगढ (उत्तर प्रदेश)।

----गैर-अपीलार्थी/याचिकाकर्ता

2. श्री आर.के. जैन, अध्यक्ष, श्रम कानून सलाहकार एसोसिएशन माननीय श्रम न्यायालय संख्या 1, 6 वीं मंजिल और औद्योगिक न्यायाधिकरण, 6 वीं मंजिल, मिनी सचिवालय, जयपुर के माध्यम से।
3. श्री आलोक फतेहपुरिया, (अधिवक्ता), मैसर्स के माध्यम से केईसी इंटरनेशनल लिमिटेड, झोटवाड़ा, जयपुर- 302012।
4. श्री धनराज शर्मा, अतिरिक्त श्रम आयुक्त,
5. श्री चन्द्रभान सिंह राठौड़, संयुक्त श्रम आयुक्त,

(4 और 5 श्रम विभाग के माध्यम से, शर्मा भवन, शांति नगर, जयपुर राजस्थान सरकार के माध्यम से)।

----प्रत्यर्थी/गैर-याचिकाकर्ता

अपीलार्थी (गण) की ओर से	:	श्री आर.एन. श्री माथुर, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री रूपिन काला, अधिवक्ता के साथ वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से।
प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से	:	श्री शंकर लाल शर्मा प्रत्यर्थी क्रमांक 1-कर्मचारी व्यक्तिगत रूप से उपस्थित।

माननीय न्यायमूर्ति मनिन्द्र मोहन श्रीवास्तव

माननीय न्यायमूर्ति फरजंद अली

निर्णय

रिपोर्टेबल

5/03/2022

न्यायालय द्वारा:(मनिन्द्र मोहन श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति)

यह इंट्रा कोर्ट अपील विद्वान एकलपीठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.10.2018 के विरूद्ध निर्देशित है, जिसके द्वारा प्रत्यर्थी की रिट याचिका को औद्योगिक न्यायाधिकरण, जयपुर (इसके बाद संदर्भित) द्वारा पारित दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों को 'औद्योगिक न्यायाधिकरण' के रूप में) अपीलार्थी-नियोक्ता द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 1 कर्मचारी के विरूद्ध पारित दिनांक 08.04.1992 के सेवा-समाप्ति आदेश को चुनौती देने के मामले में अपास्त करते हुए अनुमति दी गई है। प्रत्यर्थी-रिट याचिकाकर्ता को उसके पक्ष में पारित पूर्व पंचाट के संदर्भ में अपीलार्थीगण के स्थायी कर्मचारी के रूप में मानते हुए अपना वेतन भत्ता प्राप्त करने का पात्र माना गया है। उन्हें सेवानिवृत्ति प्राप्त करने पर कानून के प्रावधानों के अनुसार सेवानिवृत्ति लाभ प्राप्त करने का भी पात्र माना गया है। विद्वान एकलपीठ ने यह भी निर्देश दिया है कि बकाया राशि की गणना की जाएगी और निर्धारित अवधि के भीतर जारी की जाएगी।

2. तथ्यात्मक मैट्रिक्स और वर्तमान अपील को जन्म देने वाले पक्षों के बीच विवाद का एक उतार-चढ़ाव वाला इतिहास है जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी के विरूद्ध अपीलार्थी-नियोक्ता द्वारा तैयार की गई दो अलग-अलग अनुशासनात्मक कार्यवाही शामिल हैं। प्रत्यर्थी

संख्या 1-कर्मचारी को 19.09.1977 को अपीलार्थी की कंपनी में अकुशल श्रमिक के रूप में नियुक्त किया गया था, जब तक कि उसे 08.08.1981 से सेवा-समाप्ति नहीं की गई थी। सेवा-समाप्ति को चुनौती देते हुए एक औद्योगिक विवाद किया था, जिसकी परिणति प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी के पक्ष में बहाली के निर्णय के रूप में हुई। इस निर्णय को अपीलार्थी-कंपनी ने उच्च न्यायालय में चुनौती दी थी। 08.08.1981 से सेवा-समाप्ति के कारण उत्पन्न विवाद के संबंध में अपीलार्थी और प्रत्यर्थी संख्या 1 के बीच मुकदमा जारी रहा और दोनों पक्षों द्वारा अपील, समीक्षा याचिका, रिकॉल आवेदन आदि दायर करके विभिन्न कार्यवाही की गई। अंत में एक निर्णय दिनांकित 03.09.2003 को श्रम न्यायालय द्वारा रिमांड के बाद पारित किया गया था और दिनांक 08.08.1981 के सेवा-समाप्ति आदेश को कानून की दृष्टि से खराब माना गया था, जिसके कारण सेवा की निरंतरता के साथ बहाली हुई। हालांकि, प्रत्यर्थी संख्या 1 के कहने पर, पंचाट के अनुपालन का पहलू जारी रहा और अंततः 14.02.2006 के आदेश के तहत खंडपीठ में उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने आदेश दिया। सिविल रिट याचिका संख्या 1996/2003 में माना गया कि श्रम न्यायालय के दिनांक 03.09.2003 के निर्णय का पूरी तरह से अनुपालन किया गया है।

3. जबकि 08.08.1981 से सेवा-समाप्ति की वैधता और वैधता से संबंधित मामला विभिन्न स्तरों पर विचाराधीन था, प्रत्यर्थी संख्या 1 को उसके पक्ष में पारित आदेशों के तहत बहाल किया गया था, 02.06.1990 को एक और आरोप-पत्र जारी किया गया था। के बाद दूसरा आरोप-पत्र दिनांक 08.06.1990 आया जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी की ओर से पंचाट के अनुसार बहाली के बाद उसके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के संबंध में कदाचार का आरोप लगाया गया। दिनांक 08.04.1992 को सेवा-समाप्ति आदेश जारी करने के साथ अनुशासनात्मक जांच समाप्त हो गई। दिनांक 08.04.1992 के सेवा-समाप्ति आदेश की मंजूरी के लिए औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (बाद में 'आई.डी. अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 33(2)(ख) के तहत दायर आवेदन पर, इस न्यायालय के समक्ष भी विभिन्न कार्यवाही की गई थी। इस अपील के पक्षकारों द्वारा माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष और अंततः दिनांक 30.03.2005 के आदेश के तहत, माननीय उच्चतम न्यायालय ने धारा के तहत अपीलार्थीगण द्वारा दायर अनुमोदन 08.04.1992 से प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी की बाद की सेवा-समाप्ति के संबंध में आई.डी. अधिनियम की

33(2)(ख) आवेदन पर निर्णय लेने के लिए मामले को उच्च न्यायालय की खंडपीठ को भेज दिया।

आई.डी. अधिनियम की धारा 33(2)(ख) के तहत अनुमोदन आवेदन पर सुनवाई के लिए मामले की रिमांड के बाद, इस न्यायालय की खंडपीठ ने 09.03.2006 को खंडपीठ सिविल विशेष अपील (रिट) संख्या 1006/2002 में एक विस्तृत आदेश पारित किया। ने आई.डी. अधिनियम की धारा 33 (2)(ख) के तहत नए आवेदन पर निर्णय लेने के लिए मामले को फिर से औद्योगिक न्यायाधिकरण को वापस भेज दिया, जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी की 08.04.1992 से प्रभावी बर्खास्तगी की मंजूरी मांगी गई। औद्योगिक न्यायाधिकरण ने अनुमोदन आवेदन पर रिमांड पर सुनवाई की और प्रारंभिक मुद्दा तय किया कि क्या प्रबंधन द्वारा की गई जांच निष्पक्ष और उचित थी। दिनांक 14.06.2006 के आदेश के तहत, औद्योगिक न्यायाधिकरण ने प्रबंधन द्वारा की गई जांच को निष्पक्ष और उचित माना। इसके बाद, औद्योगिक न्यायाधिकरण ने 03.02.2007 को गुणागुण के आधार पर आदेश पारित करते हुए 08.04.1992 से प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी की बर्खास्तगी को मंजूरी दे दी। इस आदेश को प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी द्वारा एकलपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 1012/2007। दायर करके उच्च न्यायालय के समक्ष फिर से चुनौती दी गई। दिनांक 13.06.2012 के आदेश के तहत, इस न्यायालय के विद्वान एकलपीठ ने मामले को नए सिरे से तय करने के लिए एक बार फिर मामले को औद्योगिक न्यायाधिकरण को वापस भेज दिया। मुकदमेबाजी के एक और दौर के बाद, जब मामला फिर से आई.डी. अधिनियम की धारा 33 (2)(ख) के तहत अनुमोदन आवेदन पर विचार करने के लिए औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष आया, तो औद्योगिक न्यायाधिकरण ने पहले 29.08.2012 को एक आदेश पारित किया कि श्री आलोक फतेहपुरिया आई.डी. अधिनियम की धारा 36, उप-धारा (2) के तहत न्यायाधिकरण के समक्ष कंपनी का प्रतिनिधित्व करने के पात्र हैं। इसके बाद, दिनांक 14.09.2012 के आदेश के तहत, विद्वान औद्योगिक न्यायाधिकरण ने एक विस्तृत आदेश द्वारा 08.04.1992 से प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी की बर्खास्तगी को मंजूरी दे दी। 29.08.2012 और 14.09.2012 के इन दो आदेशों को प्रत्यर्थी संख्या 1- कर्मकार द्वारा एकलपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 3213/2015, में चुनौती दी गई थी। जिसमें विद्वान एकलपीठ ने प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी के पक्ष में निर्णय सुनाया,

उसकी रिट याचिका की अनुमति दी और दिनांक 30.10.2018 को आदेश पारित किया, जो इस अपील में आक्षेपित है।

4. इससे पहले कि हम विद्वान एकलपीठ द्वारा पारित आदेश की औचित्व की जांच करने के लिए आगे बढ़ें, यह स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि यह अपील दिनांक 08.04.1992 के बाद के बर्खास्तगी आदेश की वैधता के मुद्दे तक ही सीमित है, न कि पहले की वैधता और वैधता के मुद्दे तक। सेवा-समाप्ति आदेश दिनांक 08.08.1981, उस मामले में, बहाली का पंचाट अंतिम रूप ले चुका है।

5. विद्वान एकलपीठ द्वारा पारित आदेश की यथार्थता और वैधता पर प्रश्न उठाते हुए, अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने रिट याचिका की स्थिरता के साथ-साथ मामले में मामले की योग्यता के संबंध में विस्तृत प्रस्तुतियाँ दी हैं। दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों के संबंध में विद्वान एकलपीठ द्वारा पारित आदेश की वैधता के बारे में औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा आई.डी. अधिनियम की धारा 33 (2) (ख) के तहत मंजूरी देते हुए दिनांक 08.04.1992. को बर्खास्तगी आदेश दिया गया।

जहां तक प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी द्वारा दायर रिट याचिका की स्थिरता के संबंध में तर्क का प्रश्न है, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क यह है कि दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों के बाद औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा अनुमोदन प्रदान किया गया था। आई.डी. अधिनियम की धारा 33(2)(ख), प्रत्यर्थी संख्या 1-रिट याचिकाकर्ता ने इन दोनों आदेशों को एकलपीठ में चुनौती दी। सिविल रिट याचिका संख्या 5584/2013, जिसे अपास्त कर दिया गया था और अपील में खंडपीठ द्वारा खंडपीठ सिविल विशेष अपील (रिट) संख्या 517/2013 में पारित निर्णय दिनांक 06.12.2013 द्वारा बर्खास्तगी आदेश की पुष्टि की गई थी। उस आदेश के विरूद्ध समीक्षा भी अपास्त कर दी गई और अंततः प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा मामले को माननीय उच्चतम न्यायालय में ले जाया गया और माननीय उच्चतम न्यायालय ने रिट याचिका और उसके आदेश के विरूद्ध दायर समीक्षा को भी अपास्त कर दिया। अतः, यह आग्रह किया जाता है कि दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों को अंतिम रूप देने के बाद, रिट याचिका संख्या 3213/2015 जिसमें आक्षेपित आदेश पारित किया गया है, को पुनर्न्याय के सिद्धांत द्वारा रोक दिया गया

था। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपनी प्रस्तुति को विस्तार से बताया और **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नवाब हुसैन, ए.आई.आर. 1977 एससी 1680 और फॉरवर्ड कंस्ट्रक्शन कंपनी और अन्य बनाम प्रभात मंडल (पंजीकृत), अंधेरी और अन्य, ए.आई.आर. 1986 एससी 391** में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा जताया और तर्क दिया कि एक बार 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों की वैधता और वैधता पर मुकदमेबाजी के पहले दौर में विचार किया गया था, भले ही इस पर कोई विस्तृत चर्चा नहीं हुई थी। कहा गया कि वैधता और मांगी गई राहत लेकिन नहीं दी गई, तो इसे अस्वीकार माना जाएगा। यह तर्क दिया जाता है कि रचनात्मक न्यायिक निर्णय का सिद्धांत रिट कार्यवाही पर लागू होता है और अतः, याचिका, जिसे उठाया जा सकता था लेकिन दायर नहीं की गई , बाद में रिट याचिका दायर नहीं की जा सकती। मुकदमेबाजी के पहले दौर में दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों की वैधता को चुनौती देते हुए, प्रत्यर्थी संख्या 1-रिट याचिकाकर्ता ने सी.बी.आई. जांच कराने की प्रार्थना की और न केवल अधिकारियों के विरूद्ध निराधार आरोप लगाए। बल्किअपीलार्थी-कंपनी को, न्यायिक अधिकारियों और न्यायामूर्तियों की भी, जिन्होंने न्यायिक पक्ष में उसके मामले को निपटाया। प्रत्यर्थी संख्या 1 के लिए दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों की वैधता के संबंध में मुद्दे को फिर से पुनर्विचार संभव नहीं था।

विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का आगे प्रस्तुतीकरण यह है कि दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों को चुनौती देने के मामले में इस न्यायालय के समक्ष मुकदमेबाजी के पहले दौर के बाद भी, प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा दायर समीक्षा याचिका को अपास्त करने के बाद, जो अंतिम रूप ले चुका था। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिनांक 24.03.2015 के आदेश के तहत कर्मकार की, बाद की रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं थी।

6. वैकल्पिक रूप से, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आई.डी. अधिनियम की धारा 33(2)(ख) के तहत अनुमोदन के मामले में विद्वान एकलपीठ द्वारा पारित आदेश की यथार्थता और वैधता के संबंध में मामले की योग्यता के पहलू पर बहस की। औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा दिनांक 28.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों के तहत, सबसे पहले इस बात पर प्रकाश डाला गया कि औद्योगिक न्यायाधिकरण ने, इस न्यायालय द्वारा मामले की रिमांड के बाद, जांच की निष्पक्षता के संबंध में एक प्रारंभिक मुद्दा तैयार किया

और 14.06.2006 को एक आदेश पारित किया गया। यह माना गया कि प्रबंधन द्वारा की गई जांच निष्पक्ष और उचित थी। इसके बाद, मामले की सुनवाई गुणागुण के आधार पर की गई और 03.02.2007 को सेवा-समाप्ति आदेश दिनांक 08.04.1992 को मंजूरी देते हुए एक आदेश पारित किया गया। हालाँकि, औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 03.02.2007 के आदेश को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी, प्रारंभिक मुद्दे पर निर्णय लेने वाले दिनांक 14.06.2006 के पहले के आदेश को कभी चुनौती नहीं दी गई थी और अतः, इसे अंतिम रूप दिया गया। विद्वान एकलपीठ ने औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 14.06.2006 के आदेश को चुनौती न देने के प्रभाव पर विचार न करके कानून की गलती की, जिसके तहत औद्योगिक न्यायाधिकरण ने माना कि जांच निष्पक्ष और उचित थी।

7. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का आगे प्रस्तुतीकरण यह है कि जहां तक श्री आलोक फतेहपुरिया की नियुक्ति का संबंध है, यह तर्क दिया गया है कि आदेश के पैरा 36 में विद्वान एकलपीठ द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष विधिक त्रुटि से ग्रस्त है, क्योंकि श्री आलोक फतेहपुरिया एक अधिवक्ता होने के अलावा, एम्प्लॉयर्स एसोसिएशन ऑफ राजस्थान, जयपुर के कार्यकारी बोर्ड सदस्य भी थे और एम्प्लॉयर्स एसोसिएशन ऑफ राजस्थान, जयपुर के पदाधिकारी के रूप में कंपनी का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, जिस एसोसिएशन में अपीलार्थी-कंपनी भी सदस्य थी। अतः, यह तर्क दिया गया है कि श्री आलोक फतेहपुरिया औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष कंपनी का प्रतिनिधित्व करने के पात्र थे। इस न्यायालय के ध्यान में यह भी लाया गया है कि एकलपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 3423/2003, आदेश दिनांक 23.11.2004 द्वारा यह माना गया है कि श्री आलोक फतेहपुरिया, राजस्थान के नियोक्ता संघ के पदाधिकारी होने के नाते, औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष नियोक्ता का प्रतिनिधित्व करने के पात्र हैं। न्यायालय के इस आदेश को चुनौती नहीं दी गई है, जिससे यह मुद्दा शांत हो गया है और अतः, इस संबंध में विद्वान एकलपीठ का निष्कर्ष कानून में टिकाऊ नहीं है। उन्होंने आगे यह भी कहा कि किसी भी मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों और इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में इस तरह के मुद्दे को बंद कर दिया गया है।

8. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का आगे प्रस्तुतीकरण यह है कि भले ही दिनांक

08.08.1981 के सेवा-समाप्ति आदेश के विरुद्ध प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी के पक्ष में पारित पंचाट के अनुपालन के संबंध में मुद्दा दिनांक 14.02.2006 के आदेश द्वारा बंद कर दिया गया है, 18.04.2006 को इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित, उस मुद्दे को वर्तमान रिट याचिका में प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी द्वारा फिर से उठाने की मांग की गई है। उनका कहना था कि 08.08.1981 से पहले दौर में बर्खास्तगी के बाद इसे कानून में बुरा माना गया और 01.08.1985 को बहाली का पंचाट पारित किया गया, प्रत्यर्थी को 19.02.1986 को सेवा में बहाल किया गया और पिछला वेतन भी दिया गया। अतः, 08.08.1981 से प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी की सेवा-समाप्ति के संबंध में श्रम न्यायालय द्वारा पारित पंचाट के संबंध में कुछ भी अनुपालन नहीं किया जाना बाकी है।

9. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की अंतिम दलील यह है कि विद्वान एकलपीठ ने अवैध रूप से आक्षेपित आदेश के पैरा 36 में एक निष्कर्ष दर्ज किया है जिसमें कहा गया है कि कदाचार के कुछ आरोपों पर दिनांक 08.04.1992 के आदेश के बाद बर्खास्तगी अंतर्निहित द्वेष और विकसित पूर्वाग्रह का परिणाम थी। प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी द्वारा उत्पीड़न का आरोप लगाते हुए तैयार की गई विभिन्न कार्यवाहियों का विवरण और उक्त निष्कर्ष रिकॉर्ड पर रखी गई किसी भी सामग्री के बजाय पक्षकारों के बीच लंबे समय तक विवाद के लंबित रहने से अधिक प्रभावित है। यह तर्क दिया गया है कि एक बार 08.04.1992 को कदाचार के आरोप में बर्खास्तगी को निष्पक्ष, उचित और विधिक माना गया है और प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी द्वारा किए गए कदाचार के विश्वसनीय साक्ष्य के आधार पर, दुर्भावना का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है अनिर्णित। मात्र तथ्य यह है कि दिनांक 08.08.1981 को सेवा-समाप्ति के पहले आदेश की वैधता और वैधता के संबंध में विवाद के लंबित रहने के दौरान, एक पंचाट के तहत बहाली के बाद, कदाचार के आरोप पर फिर से विभागीय जांच शुरू की गई थी। प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी के विरूद्ध उत्पीड़न, उत्पीड़न या द्वेष के एक कार्य के रूप में इससे अधिक कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

10. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर, जो विद्वान एकलपीठ द्वारा पारित आदेश का बचाव कर रहा है, ने यह कहते हुए विस्तृत प्रस्तुतियाँ दी हैं कि उसे प्रबंधन द्वारा परेशान और पीड़ित किया गया है। उन्हें 08.08.1981 को अवैध रूप से बर्खास्त कर दिया गया था और प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी ने मामले को औद्योगिक

न्यायाधिकरण में ले जाकर कानून के तहत राहत का लाभ उठाया, जहां उनके पक्ष में बहाली का एक पंचाट पारित किया गया था। हालाँकि, अपीलार्थी-नियोक्ता ने औद्योगिक न्यायाधिकरण के आदेश का सम्मान नहीं किया। बार-बार, वे आदेशों को चुनौती देते रहे और मामले को औद्योगिक न्यायाधिकरण को भेज दिया गया और कई दौर की मुकदमेबाजी के बाद, श्रमिक का रुख सही सिद्ध हुआ जब तीसरे दौर में, 03.09.2003 को औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा उसके पक्ष में एक निर्णय पारित किया गया। में दिनांक 08.08.1981 की सेवा-समाप्ति को अवैध माना गया। इस अवधि के दौरान, प्रत्यर्थी संख्या 1-कार्यकर्ता को कई तरीकों से परेशान किया गया था और उत्पीड़न के उपाय के रूप में, वर्ष 1990 में एक के बाद एक आरोप-पत्र जारी करके उन्हें फिर से विभागीय जांच शुरु की गई। कोई उचित पूछताछ नहीं की गई. प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी द्वारा जो दस्तावेज़ मांगे गए थे, वे उसे कभी उपलब्ध नहीं कराए गए। उनका मुकाबला विशेषज्ञों से था। उसे बचाव का उचित अवसर नहीं दिया गया। बर्खास्तगी को उचित ठहराने के लिए कोई विधिक साक्ष्य एकत्र नहीं किया गया था, फिर भी 08.04.1992 को फिर से बर्खास्तगी का एक दुर्भावनापूर्ण आदेश पारित किया गया था, केवल किसी भी तरह से प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी को रोजगार से बाहर रखने के उद्देश्य से। इस रवैये की विद्वान एकलपीठ ने उचित रूप से सराहना की और कहा कि नियोक्ता द्वारा श्रमिक के विरूद्ध बार-बार और लंबे समय तक की गई निरर्थक कार्यवाही ने श्रमिक को गंभीर मानसिक आघात पहुँचाया है। दूसरे दौर में विभागीय कार्यवाही शुरू करने में अपीलार्थीगण का कार्य, जबकि उनकी सेवा-समाप्ति आदेश के संबंध में विवाद न्यायालय में लंबित था, अपने आप में मनमानी और दुर्भावनापूर्ण कार्रवाई की बात करता है। अपीलार्थीगण की ओर से द्वेष स्पष्ट रूप से स्पष्ट है क्योंकि प्रथम सेवा-समाप्ति आदेश दिनांक 08.08.1981 के मामले में दिनांक 03.09.2003 के पंचाट से मिलने वाले लाभ भी प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मकार को पूरी तरह से नहीं दिए गए हैं। अपनी दलीलों के समर्थन में, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने **भावनगर नगर पालिका बनाम अलीभाई करीमभाई और अन्य, (1977) 2 एससीसी 350; पेप्सू सड़क परिवहन निगम बनाम लछमन दास गुप्ता और अन्य, 2002 (4) एसएलआर (एससी) पृष्ठ 143; दक्षिण बंगाल राज्य परिवहन निगम बनाम स्वपन कुमार मित्रा एवं अन्य, 2006 (109) एफएलआर 1; इंडियन टेलीफोन इंडस्ट्रीज लिमिटेड और अन्य बनाम प्रभाकर एच. मंजुरे और अन्य,**

(2003) 1 एससीसी 320; जयपुर जिला सहकारी भूमि बैंक लिमिटेड विकास बनाम श्री राम गोपाल शर्मा एवं अन्य, जेटी 2002 (1) एससी 182; बंबई बंदरगाह के न्यासी बोर्ड बनाम दिलीपकुमार राघवेंद्रनाथ नाडकर्णी और अन्य, (1983) 1 एससीसी 124; बी. येलप्पा बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड एवं अन्य 2004 (1) एसएलआर पृष्ठ 228 के मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा जताया है।

11. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, याचिका में उठाया गया विवाद और आक्षेपित आदेश द्वारा निर्णय केवल दिनांक 02.06.1990 के दो आरोप-पत्रों के तहत प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी के विरूद्ध शुरू की गई विभागीय जांच में 08.04.1992 और 08.06.1990 को पारित दूसरे सेवा-समाप्ति आदेश से संबंधित है। निर्विवाद रूप से, श्रम न्यायालय द्वारा दिनांक 08.08.1981 को बर्खास्तगी को अवैध ठहराने वाले पूर्व निर्णय के तहत प्रत्यर्थी संख्या 1 को सेवा में बहाल किए जाने के बाद, अपीलार्थी-नियोक्ता ने प्रत्यर्थी संख्या 1 के विरूद्ध 02.06.1990 और 08.06.1990 को दो आरोप-पत्र जारी किए-कर्मकार। जांच अधिकारी ने जांच पूरी करने के बाद, अपनी जांच रिपोर्ट दिनांक 10.01.1991 को नियोक्ता को यह कहते हुए प्रस्तुत की कि आरोप सिद्ध पाए गए। प्रबंधन ने जांच रिपोर्ट को स्वीकार करते हुए और कदाचार की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, कर्मचारी को कदाचार के आरोप में सजा के तौर पर 08.04.1992 से सेवा से बर्खास्त कर दिया।

अपीलार्थी-नियोक्ता ने आई.डी. अधिनियम की धारा 33(2)(ख) के तहत औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष एक आवेदन भी दायर किया, जिसमें दिनांक 08.04.1992 के बर्खास्तगी आदेश की मंजूरी मांगी गई क्योंकि आई.टी.आर. 42/1989 के तहत एक और विवाद औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष लंबित था। इस न्यायालय के लिए आई.डी. अधिनियम की धारा 33(2)(ख) के तहत आवेदन से संबंधित कार्यवाही में समय-समय पर पारित किए गए विभिन्न आदेशों से निपटना आवश्यक नहीं है, लेकिन यह उल्लेख करना पर्याप्त है कि अंततः आदेश दिनांक 30.03.2005, माननीय उच्चतम न्यायालय ने आई.डी. अधिनियम की धारा 33(2)(ख) के तहत आवेदन के मामले में औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेशों की वैधता और वैधता पर निर्णय लेने के लिए मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए इस न्यायालय की खंडपीठ को भेज दिया।

माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा मामले की रिमांड के बाद, इस न्यायालय की

खंडपीठ ने सिविल विशेष अपील (रिट) संख्या 1006/2002 मे मामले की सुनवाई की और 09.03.2006 को निर्णय सुनाया, जिसके द्वारा धारा 33(2)(ख) के तहत आवेदन के नए निर्णय के लिए मामले को फिर से औद्योगिक न्यायाधिकरण को दिनांक 02.06.1990 और 08.06.1990 को आरोप-पत्र जारी करके शुरू की गई दो विभागीय जांचों में 08.04.1992 से बाद की बर्खास्तगी की मंजूरी के मामले में अधिनियम वापस भेज दिया गया।

12. रिमांड के बाद, औद्योगिक न्यायाधिकरण ने प्रारंभिक मुद्दे पर सुनवाई की कि क्या जांच निष्पक्ष और उचित थी और 14.06.2006 को यह निर्णय लिया कि प्रबंधन द्वारा की गई जांच निष्पक्ष और उचित थी। इसके बाद, औद्योगिक न्यायाधिकरण ने गुणागुण के आधार पर मामले की सुनवाई की और दिनांक 03.02.2007 के आदेश के तहत 08.04.1992 से प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी की बर्खास्तगी को मंजूरी दे दी। उस आदेश को प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी द्वारा एकलपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 1012/2007 में फिर से चुनौती दी गई। और इस न्यायालय के विद्वान एकलपीठ ने दिनांक 13.06.2012 के आदेश के तहत एक बार फिर से मामले को नए सिरे से तय करने के लिए औद्योगिक न्यायाधिकरण को वापस भेज दिया। यहां यह उल्लेख करना उचित है कि दिनांक 03.02.2007 के आदेश को चुनौती देते समय, प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी ने प्रारंभिक मुद्दे पर औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 14.06.2006 के पहले के आदेश की वैधता पर हमला नहीं किया, जिसके तहत औद्योगिक न्यायाधिकरण ने कहा था प्रबंधन द्वारा की गई जांच निष्पक्ष एवं उचित हो।

मामले की रिमांड के बाद, औद्योगिक न्यायाधिकरण ने फिर से मामले की सुनवाई के लिए आगे बढ़ा और उस चरण में, प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी ने श्री आलोक फतेहपुरिया द्वारा प्रबंधन का प्रतिनिधित्व करने पर इस आधार पर आपत्ति जताई कि वह आई.डी. अधिनियम की धारा 36 के तहत बार के मद्देनजर प्रबंधन का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। दिनांक 29.08.2012 के आदेश के तहत, औद्योगिक न्यायाधिकरण ने इस आपत्ति को अपास्त कर दिया कि आई.डी. अधिनियम की धारा 36 के तहत रोक औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष कंपनी का प्रतिनिधित्व करने वाले श्री आलोक फतेहपुरिया के रास्ते में नहीं आएगी।. इसके बाद, आई.डी. अधिनियम की धारा 33(2)(ख) के तहत आवेदन पर न्यायाधिकरण द्वारा फिर से विचार किया गया और दिनांक 14.09.2012 के आदेश के तहत, औद्योगिक

न्यायाधिकरण ने 08.04.1992 से सेवा-समाप्ति की मंजूरी दे दी। इसके बाद प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी ने एकलपीठ दायर किया। सिविल रिट याचिका संख्या 5584/2013। उस याचिका में, याचिकाकर्ता की शिकायत स्पष्ट रूप से औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों के विरुद्ध उत्पन्न हुई थी। उस याचिका में, न्यायाधिकरण के पीठासीन अधिकारी के विरूद्ध गंभीर आरोप लगाए गए थे और साजिश होने के आरोप पर एफ.आई.आर. दर्ज करने और मामले की जांच सी.बी.आई. से कराने का निर्देश देने की प्रार्थना करते हुए, दिनांकित 29.08.2012 और 14.09.2012 आदेशों को भारी लागत के साथ अपास्त करने के लिए विशेष प्रार्थना की गई थी। एकलपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 5584/2013 में की गई प्रार्थना का प्रासंगिक भाग। इस प्रकार है:

> "इस साजिश व ष्डयंत्र के द्वारा मिलीभगत से दिये गये आदेश दिनांक 29.08.2012 व 14.09.2012 हैवी से हैवी कोस्ट लगाकर अपास्त किया जावे व एफआईआर दर्ज करवाकर प्रकरण को सी.बी.आई. को सुपुर्द किया जावे।"

13. हालाँकि, ऐसा प्रतीत होता है कि सुनवाई के दौरान यद्यपि दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों को अपास्त करने की प्रार्थना याचिका में की गई थी, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने अपराध दर्ज करने और सौंपने की अपनी प्रार्थना को सबसे आगे रखने की मांग की दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों की यथार्थता और वैधता पर प्रश्न उठाने के लिए ठोस तर्क दिए बिना मामले को सी.बी.आई. को सौंप दिया गया। लेकिन फिर भी तथ्य यह है कि जब एकलपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 5584/2013 दायर की गई थी, याचिकाकर्ता/प्रत्यर्थी संख्या 1 के लिए कार्रवाई का तत्काल कारण औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा पारित 29.08.2012 और 14.09.2012 के दो आदेश थे और इसके अलावा उन आदेशों को अपास्त करने के लिए एक विशिष्ट प्रार्थना भी की गई थी, हालांकि, इसमें बेबुनियाद आरोपों पर एफ.आई.आर. दर्ज करने और मामले को सी.बी.आई. को सौंपने का निर्देश देने की प्रार्थना भी शामिल थी। हालाँकि, रिट याचिका दिनांक 15.04.2013 के आदेश द्वारा अपास्त कर दी गई। उस आदेश के विरूद्ध खंडपीठ सिविल विशेष अपील (रिट) संख्या 517/2013 को दायर की गई। उस अपील में भी, जिस राहत की मांग की गई थी, वह स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी ने दिनांक

29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों की वैधता को चुनौती दी थी और इन आदेशों को अपास्त करने के लिए राहत को भी दोहराया था:

> "अपीलार्थी के किसी भी प्रार्थना पत्र, कानूनी दृष्टांत व विरोध पर पर्दा डालकर दिनांक 29.08.2012 व 14.09.2012 को आदेश दिये गये है हैवी से हैवी कोस्ट लगाकर अपास्त किये जावें। प्रकरण क्रमांक आई.टी.आर. 39/92 व एम.आई.टी. 18/92 में रिकार्ड तक गायब है। इस कारण भी प्रकरण को सी.बी.आई. के सुपुर्द किया जावें।"

14. हालाँकि, खंडपीठ ने दिनांक 06.12.2013 के निर्णय के तहत इंट्रा कोर्ट अपील को अपास्त कर दिया। उस निर्णय के विरूद्ध एक समीक्षा याचिका भी दायर की गई थी। उस समीक्षा याचिका में, फिर से प्रार्थना दोहराई गई कि दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों को इस आरोप पर अपास्त कर दिया जाए कि ये आदेश प्रबंधन और औद्योगिक न्यायाधिकरण के पीठासीन अधिकारी के बीच रची गई साजिश का परिणाम हैं। दिनांक 21.08.2014 के आदेश द्वारा समीक्षा याचिका भी अपास्त कर दी गई।

15. यह उल्लेख करना उचित है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने मामले में श्रम न्यायालय द्वारा उसके पक्ष में पारित निर्णय दिनांक 03.09.2003 को लागू करने की मांग करते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष एक और रिट याचिका संख्या 42819/2012 दायर की। पहले की सेवा-समाप्ति दिनांक 08.08.1981 और वहां भी, श्रम न्यायालय द्वारा पारित पंचाट दिनांक 03.09.2003 के कार्यान्वयन के साथ-साथ अधिसूचना दिनांक 17.01.2006 के कार्यान्वयन की राहत की मांग करते हुए, दिनांक 29.08 के आदेशों को अपास्त करने और अलग करने के लिए एक विशिष्ट प्रार्थना की गई थी। आई.डी. अधिनियम की धारा 33(2)(ख) के तहत अनुमोदन प्रदान करने के मामले में औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा 2012 और 14.09.2012 को पारित किया गया। उस रिट याचिका को माननीय उच्चतम न्यायालय ने 28.01.2015 को अपास्त कर दिया था। उस आदेश को वापस लेने का एक आवेदन भी 24.03.2015 को अपास्त कर दिया गया था।

16. प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी द्वारा दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों को चुनौती देने का प्रयास और उन आदेशों को अपास्त करने के लिए मांगी गई विशिष्ट राहत की अनुमति नहीं थी और अतः, यह माना जाना चाहिए कि उक्त राहत को उचित

माना गया था अस्वीकार कर दिया। इसके बाद प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी द्वारा फिर से रिट याचिका संख्या 3213/2015 (जिसमें से यह अपील उत्पन्न हुई है) दायर की गई और दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों को अपास्त करने के लिए अपनी पिछली शिकायत और प्रार्थना को दोहराया गया। इस बार, कुछ अन्य राहत के साथ यह भी जोड़ा गया कि तीस श्रमिकों का रुका हुआ वेतन, ग्रेच्युटी की बढ़ी हुई राशि चक्रवृद्धि ब्याज के साथ भुगतान की जाएगी। औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 25.08.2007 के आदेश को अपास्त करने के लिए भी प्रार्थना की गई। पंचाट दिनांक 03.09.2003, अधिसूचना दिनांक 17.01.2006 के क्रियान्वयन एवं खंडपीठ सिविल विशेष अपील (रिट) संख्या 831/2002 में पारित आदेश दिनांक 18.04.2006 के ग्रेच्युटी के भुगतान के लिए प्रार्थना के साथ 01.07.2002 से चक्रवृद्धि ब्याज सहित 62,04,884/- रुपये और पेंशन के भुगतान के क्रियान्वयन हेतु भी प्रार्थना की गई। इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी, औद्योगिक न्यायाधिकरण के प्रतिकूल आदेशों से पीड़ित होने के बाद, अंतिम रिमांड के बाद, दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों के तहत, याचिकाएँ दायर करता रहा, कभी-कभी पंजीकरण के लिए प्रार्थना करता रहा एफ.आई.आर. और सी.बी.आई. जांच कराना, कभी-कभी दिनांक 03.09.2003 और अधिसूचना दिनांक 17.01.2006 के कार्यान्वयन की राहत जोड़ना और फिर वर्तमान रिट याचिका में कुछ नई राहत जोड़ना और फिर से दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों को अपास्त करने की प्रार्थना करना।

17. विवाद की न्यायसंगतता के पहलू पर विद्वान एकलपीठ ने राय दी है कि मुकदमेबाजी के पहले दौर में, इस न्यायालय ने अनुमोदन देने के मामले में औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 को पारित सेवा-समाप्ति आदेश दिनांक 08.04.1992 के आदेशों की वैधता और वैधता की जांच नहीं की थी। लेकिन केवल रिट याचिका में मांगी गई अन्य राहत तक ही सीमित है। विद्वान एकलपीठ के अनुसार, चूंकि पहले दायर की गई रिट याचिका पर केवल जांच के लिए मामले को सी.बी.आई. को स्थानांतरित करने के संबंध में विचार किया गया था, दिनांक 14.09.2012 के आदेश के तहत अनुमोदन प्रदान करने के पहलू को उठाया जा सकता था। इस उद्देश्य के लिए, विद्वान एकलपीठ ने अपने दिनांक 06.12.2013 के निर्णय के पैरा 10 में खंडपीठ द्वारा की

गई टिप्पणियों पर भरोसा किया है कि रिट याचिका मामले की जांच सी.बी.आई. से कराने के लिए मांगी गई राहत से संबंधित है और अतः, जिन निर्णयों का उल्लेख किया गया है और उन पर भरोसा किया गया है और आई.डी. अधिनियम की धारा 33(2)(ख) के प्रावधानों के संदर्भ में इसकी कोई प्रासंगिकता नहीं होगी। खंडपीठ द्वारा की गई प्रासंगिक टिप्पणियों को एकलपीठ ने अपने आदेश के पैरा 29 में संदर्भित किया है।

18. ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि एकलपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 5584/2013 दायर करते समय दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों को चुनौती दी गई थी, बहस के दौरान, मामले को अकेले सी.बी.आई. को सौंपकर जांच करने के संबंध में राहत दी गई थी और इसे लागू किया गया था। उस संदर्भ में, खंडपीठ ने यहां ऊपर उल्लिखित दिनांक 06.12.2013 के निर्णय के तहत प्रत्यर्थी संख्या 1 को आई.डी. अधिनियम के धारा 33(2)(ख) के तहत अनुमोदन प्रदान करने के मामले में आदेशों की वैधता के संबंध में प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी।

इसका मतलब यह नहीं होगा कि प्रत्यर्थी संख्या 1 उस मुद्दे को एक अलग याचिका, अर्थात वर्तमान मामले (रिट याचिका संख्या 3213/2015) द्वारा फिर से उठाने का पात्र था। प्रत्यर्थी संख्या 1 ने दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 के दो आदेशों को अपास्त करने के लिए विशिष्ट प्रार्थना की थी, लेकिन बहस के समय इसे लागू नहीं किया गया था और जांच को सौंपने के लिए निर्देश मांगने वाली प्रार्थना पर ही आदेश किए गए थे। अतः, विचार के लिए यह प्रश्न उठता है कि क्या प्रत्यर्थी संख्या 1 फिर से उसी मुद्दे को उठा सकता था और एकलपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 5584/2013 में मांगी गई राहत पर दबाव न डालते हुए बाद की याचिका में भी यही प्रार्थना कर सकता था।

19. जैसे ही **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नवाब हुसैन (सुप्रा.)** के मामले में। के अनुसार, रचनात्मक निर्णय के सिद्धांत को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा रिट कार्यवाही में लागू किया गया था। तथ्यों के आधार पर, उस मामले में याचिकाकर्ता, जो उप-निरीक्षक के रूप में कार्यरत था, को पुलिस उप महानिरीक्षक के एक आदेश द्वारा सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। अपील अपास्त होने पर, इस आधार पर अनुशासनात्मक कार्यवाही को अपास्त करने के लिए उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की गई थी कि उन्हें अपने विरूद्ध आरोपों को पूरा करने का उचित अवसर नहीं दिया गया था और उनके विरूद्ध की गई

कार्रवाई दुर्भावनापूर्ण थी। रिट याचिका अपास्त कर दी गई. इसके बाद, याचिकाकर्ता ने सिविल न्यायाधीश की न्यायालय में एक सिविल मुकदमा दायर किया, जहां उसने अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर बर्खास्तगी के आदेश को चुनौती दी कि उसे पुलिस महानिरीक्षक द्वारा नियुक्त किया गया था और पुलिस उपमहानिरीक्षक बर्खास्त करने में सक्षम नहीं थे। याचिकाकर्ता भारत के संविधान के अनुच्छेद 311, उप-अनुच्छेद (1) के आधार पर। चूंकि मुकदमे में बचाव के रूप में राज्य द्वारा पुनर्न्यायिकता की याचिका उठाई गई थी, अतः मामला माननीय उच्चतम न्यायालय तक पहुंच गया। माननीय उच्चतम न्यायालय ने प्रति न्यायिक विबंध के सिद्धांत का उल्लेख किया और इसे इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

> "**3.** न्यायिक प्रतिबन्ध विबंध का सिद्धांत साक्ष्य का एक नियम है। जैसाकि मार्जिनसन बनाम ब्लैकबर्न बरो काउंसिल, (1939) 2 केबी 426 पृष्ठ 437 पर कहा गया है। इसे "साक्ष्य का व्यापक नियम कहा जा सकता है जो कार्रवाई के कारण के पुनः दावे को प्रतिबंधित करता है"। यह सिद्धांत दो सिद्धांतों पर आधारित है:
> (i) सार्वजनिक नीति के मामले के रूप में समुदाय के सामान्य हित में विवादों के अंतिम मापन के लिए न्यायिक निर्णयों की अंतिमता और निर्णायकता और (ii) व्यक्ति का हित कि उसे मुकदमेबाजी से बचाया जाना चाहिए। अतः यह उन मामलों को फिर से खोलने में बाधा डालकर न केवल सार्वजनिक बल्कि निजी उद्देश्य भी पूरा करता है जिन पर एक बार निर्णय सुनाया जा चुका है। इस प्रकार कार्रवाई के एक ही कारण पर एक ही नागरिक राहत के लिए दूसरा निर्णय प्राप्त करना स्वीकार्य नहीं है, अन्यथा विवाद की भावना समान अधिकार के परस्पर विरोधी निर्णयों को जन्म दे सकती है, कार्यों की बहुलता को जन्म दे सकती है और न्याय प्रशासन को प्रभावित कर सकती है। यह कार्य बदनामी का कारण है जो किसी कार्य को जन्म देता है, और यही कारण है कि न्यायालयों के लिए यह पहचानना आवश्यक है कि कार्य का कारण जिसके परिणामस्वरूप निर्णय होता है, उसे अपनी पहचान और जीवन शक्ति खो देनी चाहिए और निर्णय सुनाए जाने तक निर्णय में विलीन हो जाना चाहिए। अतः यह निर्णय से बच नहीं सकता है, या उन्हीं तथ्यों पर कार्रवाई का कोई अन्य कारण उत्पन्न नहीं कर सकता है। इसे ही न्यायिक निर्णय के सामान्य सिद्धांत के रूप में जाना जाता है।

इसके बाद माननीय उच्चतम न्यायालय ने रचनात्मक निर्णय के सिद्धांत की व्याख्या की और निम्नानुसार कहा:

> "**4.** लेकिन यह हो सकता है कि तथ्यों का एक ही स्वरूप कार्रवाई के दो या दो से अधिक कारणों को जन्म दे सकता है। यदि ऐसे मामले में

किसी व्यक्ति को एक समय में कार्रवाई के एक कारण को चुनने और मुकदमा करने की अनुमति दी जाती है और दूसरे को बाद की मुकदमेबाजी के लिए आरक्षित करने की अनुमति दी जाती है, तो इससे मुकदमेबाजी का बोझ बढ़ जाएगा। अतः न्यायालयों ने इस तरह की कार्रवाई को अपनी प्रक्रिया का दुरुपयोग माना है और सोमरवेल एल.जे. ने इसका उत्तर ग्रीनहाल बनाम मल्लार्ड (1947) 2 ऑल ईआर 255 पृष्ठ 257 में इस प्रकार दिया है:-

"मुझे लगता है कि जिन प्राधिकारियों को मैं संदर्भित करूंगा, उनके लिए यह कहना सही होगा कि इस उद्देश्य के लिए न्यायिक निर्णय उन मुद्दों तक ही सीमित नहीं है, जिन पर न्यायालय को वास्तव में निर्णय लेने के लिए कहा गया है, बल्कि इसमें उन मुद्दों या तथ्यों को शामिल किया गया है जो बहुत स्पष्ट हैं मुकदमे की विषय-वस्तु का हिस्सा और इतना स्पष्ट रूप से उठाया जा सकता था कि उनके संबंध में नई कार्यवाही शुरू करने की अनुमति देना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा।"

अतः यह उसी सिद्धांत का एक और समान रूप से आवश्यक और प्रभावकारी पहलू है, क्योंकि यह एक चिड़चिड़े मुकदमेबाज को सीमित करने के सामान्य सिद्धांत को उपयुक्त रूप से समझकर न्याय के स्तर को बढ़ाने में मदद करता है। इसीलिए, इस अन्य नियम को कभी-कभी रचनात्मक निर्णय के रूप में संदर्भित किया जाता है जो वास्तव में, सामान्य सिद्धांत का एक पहलू या प्रवर्धन है।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने रचनात्मक निर्णय के सिद्धांत के अनुप्रयोग के पहलू पर कानून के विकास को ध्यान में रखते हुए, कई निर्णयों में तय किए गए सिद्धांत की व्याख्या करते हुए, कानून को निम्नानुसार घोषित किया:

"**7.** जो प्रश्न विशेष रूप से विचार के लिए उठा वह यह था कि क्या रचनात्मक निर्णय का सिद्धांत उस प्रकार की रिट याचिकाओं पर लागू होता है। यह देखते हुए कि रचनात्मक निर्णय का नियम "एक तरह से सिविल प्रक्रिया संहिता द्वारा निर्धारित कुछ हद तक तकनीकी या कृत्रिम नियम था", इस न्यायालय ने कानून को निम्नलिखित शब्दों में घोषित किया, -

"यह नियम बताता है कि यदि किसी पक्ष द्वारा उसके और उसके प्रतिद्वंद्वी के बीच कार्यवाही में कोई याचिका दायर की जा सकती है, तो उसे बाद की कार्यवाही में उसी पक्षकार के विरूद्ध उस याचिका को लेने की अनुमति नहीं दी जाएगी जो कार्रवाई के समान कारण पर आधारित है ; लेकिन मूल रूप से, यह दृष्टिकोण भी सार्वजनिक नीति के समान विचारों पर आधारित है, क्योंकि यदि रचनात्मक निर्णय का सिद्धांत रिट कार्यवाही पर लागू नहीं होता है, तो यह पक्षकार के लिए एक के बाद एक कार्यवाही करने और हर बार नए आधार का आग्रह करने के लिए

खुला होगा; और यह स्पष्ट रूप से सार्वजनिक नीति के उन विचारों से असंगत है जिनका हमने अभी उल्लेख किया है।"

अंतिम लेकिन समापन पैराग्राफ में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा कि जहां याचिका उपलब्ध थी, लेकिन पहले दौर में नहीं उठाई गई थी, भले ही यह रिट याचिकाकर्ता के ज्ञान में था, न्यायिक निर्णय अगली याचिका पर रोक लगा देगा। इसे इस प्रकार देखा गया:

> "**8.** यह हमारे सामने विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी ने उच्च न्यायालय में दायर रिट याचिका में यह दलील नहीं उठाई कि कला के सीएल (1) के आधार पर। संविधान के अनुच्छेद 311 के अनुसार उन्हें पुलिस उप महानिरीक्षक द्वारा बर्खास्त नहीं किया जा सकता था क्योंकि उनकी नियुक्ति पुलिस महानिरीक्षक द्वारा की गई थी। यह भी विवाद में नहीं है कि वह एक महत्वपूर्ण दलील थी जो प्रत्यर्थी की जानकारी में थी और उसे रिट याचिका में लिया जा सकता था, लेकिन उसने अन्य दलीलें उठाकर खुद को संतुष्ट किया कि उसे मिलने का उचित अवसर नहीं दिया गया था। विभागीय जांच में उनके विरूद्ध मामला दर्ज किया गया और कहा गया कि उनके विरूद्ध की गई कार्रवाई दुर्भावनापूर्ण थी। अतः उसके लिए अपनी बर्खास्तगी को बाद के मुकदमे में इस आधार पर चुनौती देना स्वीकार्य नहीं था कि उसे उसके अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा बर्खास्त कर दिया गया था जिसके द्वारा उसे नियुक्त किया गया था। यह रचनात्मक निर्णय के सिद्धांत द्वारा स्पष्ट रूप से वर्जित था और उच्च न्यायालय ने इसके विपरीत दृष्टिकोण अपनाकर गलती की।"

20. **फॉरवर्ड कंस्ट्रक्शन कंपनी और अन्य (सुप्रा.)** के मामले में एक बाद के निर्णय में, पुनर्न्याय के सिद्धांत की प्रयोज्यता के संबंध में मुद्दा फिर से उठा। उच्च न्यायालय में, पुनर्न्याय की याचिका को दो कारणों से अस्वीकार कर दिया गया था; पहला यह कि पिछली रिट याचिका में, नियमों के तहत दी गई अनुमति की वैधता कोई मुद्दा नहीं थी और दूसरी, पहले की रिट याचिका प्रामाणिक नहीं थी और वह कुछ असंतुष्ट याचिकाकर्ता द्वारा लगाई गई थी। दो मुद्दों से निपटते हुए, माननीय उच्चतम न्यायालय निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया:

> "**20.** जहां तक पहले कारण का प्रश्न है, हमारी राय में उच्च न्यायालय का यह मानना सही नहीं था कि पहले का निर्णय न्यायिक के रूप में काम नहीं करेगा क्योंकि वर्तमान याचिका में लिए गए आधारों में से एक पिछली याचिका में इसकी अनुपस्थिति के कारण स्पष्ट था। स्पष्टीकरण धारा IV से 11, सी.पी.सी. यह प्रावधान करता है कि कोई भी मामला जिसे ऐसे पूर्व मुकदमे में बचाव या हमले का आधार बनाया जाना चाहिए

था, उसे ऐसे मुकदमे में सीधे और महत्वपूर्ण रूप से मुद्दा माना जाएगा। एक निर्णय न केवल निर्धारित वास्तविक मामले के संबंध में निर्णायक और अंतिम होता है, बल्कि हर दूसरे मामले के संबंध में भी होता है, जिस पर पक्षकारों को मुकदमा करना चाहिए था और इसे मुकदमेबाजी के विषय वस्तु और हर मामले के साथ आकस्मिक या अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ माना जाता है। दावे या बचाव दोनों मामलों के संबंध में मूल कार्रवाई के वैध दायरे में आना। स्पष्टीकरण IV में अंतर्निहित सिद्धांत यह है कि जहां पक्षकारों को किसी मामले को विवादित करने का अवसर मिला है, उसे वही माना जाना चाहिए जैसे कि मामला वास्तव में विवादित हो गया था और निर्णय लिया गया था। यह सच है कि जहां कोई मामला रचनात्मक रूप से विचाराधीन है, वहां यह नहीं कहा जा सकता कि वास्तव में उस पर सुनवाई हुई और निर्णय हुआ। इसे केवल सुना और निर्णय लिया गया माना जा सकता है। अतः, पहले कारण में बिल्कुल कोई बल नहीं है।

इस प्रकार, सिद्धांतों के आधार पर, **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नवाब हुसैन (सुप्रा.)** के मामले में पहले जो माना गया है माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दोहराया गया था।

21. उपरोक्त सिद्धांतों को वर्तमान मामले में लागू करने पर, यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी संख्या 1- कर्मचारी, औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों का सामना करने के बाद, जो उसके लिए रिट याचिका संख्या 5584/2013 दायर करने का कारण था में, न केवल इन दो आदेशों के विरूद्ध अपनी शिकायत व्यक्त की थी, बल्कि उन आदेशों को अपास्त करने के लिए स्पष्ट रूप से राहत की भी मांग की थी, हालांकि, एफ.आई.आर. दर्ज करने और सी.बी.आई. द्वारा जांच की अन्य राहत के साथ जोड़ा गया था। 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों के विरूद्ध राहत नहीं देने और केवल एफ.आई.आर. दर्ज करने और सी.बी.आई. द्वारा जांच के पहलू पर अपनी रिट याचिका दायर करने का विकल्प चुनने पर, हमारी सुविचारित राय में, प्रत्यर्थी संख्या 1- कर्मचारी को आगामी कार्यवाही में आदेश दिनांक 29.08.2012 एवं 14.09.2012 के अनुसार चुनौती देने से स्पष्ट रूप से रोक दिया गया। विद्वान एकलपीठ का यह विचार कि चूंकि मुकदमेबाजी के पहले दौर में उन दो आदेशों की वैधता की जांच नहीं की गई थी, अतः, प्रत्यर्थी संख्या 1 के लिए एक और रिट याचिका दायर करने का विकल्प था, कानून में स्वीकार्य नहीं है। सिद्धांत, जो माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित किए गए हैं, जैसाकि यहां ऊपर विस्तार से चर्चा की गई है। बल्कि, यह सिद्धांत कि यदि राहत नहीं दी

गई तो उसे अस्वीकार कर दिया जाएगा, वर्तमान मामले में लागू होगा। हालाँकि, प्रत्यर्थी संख्या 1 के लिए यह खुला था कि वह मुकदमेबाजी के पहले दौर में न्यायालय से शिकायत कर सकता था कि 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों को चुनौती देने की जांच नहीं की गई थी, लेकिन प्रत्यर्थी संख्या 1 ने ऐसा कोई मामला नहीं उठाने का निर्णय किया। उन्होंने इस प्रार्थना को न केवल विद्वान एकलपीठ के आदेश के विरूद्ध अपील में दोहराया, बल्कि माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष दायर याचिका में भी दोहराया कि दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों को अपास्त कर दिया जाए, कानून ने इसकी अनुमति नहीं दी क्योंकि उन आदेशों को चुनौती देने के मामले में कार्यवाही अंतिम रूप ले चुकी है। अतः, इस संबंध में विद्वान एकलपीठ के निष्कर्षों को कानून में बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

22. हालांकि, हमारा विचार है कि दिनांक 29.08.2012 और 14.09.2012 के आदेशों को चुनौती देने वाली रिट याचिका को रचनात्मक न्यायिक न्याय के साथ न्याय के सिद्धांत द्वारा रोक दिया गया था, हमने मामले की खूबियों की भी जांच की है।

23. सबसे पहले, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि जहां तक विभागीय जांच का प्रश्न है, जो उच्च न्यायालय द्वारा रिमांड के बाद दिनांक 08.04.1992 को बर्खास्तगी के आदेश में समाप्त हुई, जब औद्योगिक न्यायाधिकरण ने 14.06.2006 को एक आदेश पारित किया यह मानते हुए कि जांच निष्पक्ष और उचित थी, प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी ने उस आदेश को चुनौती नहीं दी। जब 03.02.2007 को औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा अंतिम आदेश पारित किया गया, तभी न्यायालय के समक्ष याचिका दायर की गई, जिसके कारण रिमांड का एक और दौर शुरू हुआ।

24. विद्वान एकलपीठ ने आक्षेपित आदेश के माध्यम से दिनांक 08.04.1992 के बर्खास्तगी आदेश को मंजूरी देने वाले आदेश को मुख्य रूप से इस विचार पर अपास्त कर दिया है कि औद्योगिक न्यायाधिकरण को आई.डी. की धारा 36 के तहत आपत्ति के बाद श्री आलोक फतेहपुरिया को नियोक्ता का प्रतिनिधित्व करने की अनुमति नहीं देनी चाहिए थी। अधिनियम एक पक्ष द्वारा बनाया गया था और प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी के विरूद्ध शुरू की गई कार्यवाही अंतर्निहित द्वेष और पूर्वाग्रह के कारण थी जो प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी द्वारा

उसके मामले में प्रबंधन के विरूद्ध शुरू की गई पिछली कार्यवाही वर्ष 1981 में पहले समाप्ति के कारण विकसित हुई थी।

25. जहां तक औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष श्री आलोक फतेहपुरिया द्वारा नियोक्ता का प्रतिनिधित्व करने का प्रश्न है, विद्वान एकलपीठ ने आदेश के पैरा 33 में माना है कि चूंकि श्री आलोक फतेहपुरिया एक अधिवक्ता हैं, भले ही वह एसोसिएशन के सदस्य हों। एक अधिवक्ता के रूप में अपना दर्जा नहीं खोएंगे। आगे यह देखा गया है कि आई.डी. अधिनियम की धारा 36 का उद्देश्य पक्षकारों के बीच समान अवसर बनाए रखना है और औद्योगिक न्यायाधिकरण को धारा 36 के तहत आपत्ति प्राप्त होने के बाद श्री आलोक फतेहपुरिया को नियोक्ता का प्रतिनिधित्व करने की अनुमति नहीं देनी चाहिए थी।

औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष प्रत्यर्थी संख्या 1-रिट याचिकाकर्ता द्वारा इस संबंध में उठाई गई आपत्ति पर विचार किया गया और दिनांक 29.08.2012 के आदेश द्वारा अपास्त कर दिया गया। तथ्यों के आधार पर, विद्वान औद्योगिक न्यायाधिकरण ने दर्ज किया है कि वर्तमान मामले में, कंपनी/नियोक्ता द्वारा एक प्रमाणपत्र रिकॉर्ड पर रखा गया था, जो राजस्थान के नियोक्ता संघ द्वारा जारी किया गया था, जिसके अनुसार, मैसर्स केईसी इंटरनेशनल लिमिटेड कंपनी एम्प्लॉयर्स एसोसिएशन ऑफ राजस्थान की सदस्य है। एम्प्लॉयर्स एसोसिएशन ऑफ राजस्थान द्वारा जारी एक अन्य प्रमाणपत्र भी औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष रखा गया जिसमें श्री आलोक फतेहपुरिया को एसोसिएशन के कार्यकारी बोर्ड का सदस्य और पदाधिकारी होने के लिए प्रमाणित किया गया है। ये तथ्य, जिन पर औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा भरोसा किया गया था, प्रत्यर्थी संख्या 1-रिट याचिकाकर्ता द्वारा विद्वान एकलपीठ के समक्ष दायर याचिका में विवादित नहीं किया गया है। इसके अलावा, नियोक्ता-कंपनी के उपाध्यक्ष द्वारा श्री आलोक फतेहपुरिया के पक्ष में जारी प्राधिकार पत्र पर भी विवाद नहीं किया गया है। अतः, इस स्वीकृत तथ्यात्मक आधार पर, यह जांचने की आवश्यकता है कि क्या श्री आलोक फतेहपुरिया द्वारा प्रतिनिधित्व पर कोई रोक है, जो हालांकि, एक अधिवक्ता हैं, लेकिन अन्यथा राजस्थान के नियोक्ता संघ के कार्यकारी बोर्ड के एक पदाधिकारी और सदस्य हैं। और मैसर्स. केईसी इंटरनेशनल लिमिटेड कंपनी, नियोक्ता राजस्थान के नियोक्ता संघ का सदस्य है। इसके अलावा, श्री आलोक फतेहपुरिया प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित हो रहे थे और उन्होंने कोई वकालतनामा दायर

नहीं किया, जिससे यह कहा जा सके कि वह एक अधिवक्ता के रूप में प्रतिनिधित्व कर रहे थे। ऐसे तथ्यात्मक आधार पर, हमारी सुविचारित राय में, नियोक्ता-कंपनी के लिए आई.डी. अधिनियम की धारा 36 के तहत औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष अपने प्रतिनिधि के रूप में श्री आलोक फतेहपुरिया द्वारा अपने मामले का प्रतिनिधित्व मांगने पर कोई रोक नहीं थी, हालांकि, एक अधिवक्ता के रूप में नहीं। विद्वान औद्योगिक न्यायाधिकरण ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कि आई.डी. अधिनियम की धारा 36 के तहत रोक लागू नहीं होती है, कई निर्णयों पर भरोसा किया है। अपीलार्थी-कंपनी ने अपने तर्क के समर्थन में कम से कम 14 निर्णयों पर भरोसा किया है कि औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा किया गया विचार कि वर्तमान मामले के तथ्यात्मक आधार पर, बार आकर्षित नहीं किया जाएगा, सही है। **पारादीप पोर्ट ट्रस्ट बनाम देयर वर्कमेन, 1976 खंड II एल.एल.जे. (एससी) पृष्ठ 409** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय को छोड़कर, हमें सभी निर्णयों का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। उस मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने धारा 36, उप-धारा के तहत आपत्ति के आधार पर अपने अधिवक्ता के माध्यम से न्यायाधिकरण के समक्ष अपीलार्थी के प्रतिनिधित्व के लिए प्रार्थना को न्यायाधिकरण द्वारा अस्वीकार करने की वैधता पर विचार किया। यूनियन द्वारा उठाए गए आई.डी. अधिनियम और प्रबंधन द्वारा उठाए गए आपत्ति के बावजूद आई.डी. अधिनियम की धारा 36, उपधारा (1) के तहत यूनियन के अधिवक्ता और उपाध्यक्ष को भी अनुमति दी गई है। इसे निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया था:

> "15. हालाँकि, यदि कोई विधिक व्यवसायी किसी कंपनी या निगम के अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया है और वह उनके वेतन में है और उनके नियंत्रण में है और प्रैक्टिस करने वाला अधिवक्ता नहीं है, तो यह तथ्य मान्य नहीं होगा कि वह पहले एक विधिक व्यवसायी था या उसके पास विधिक डिग्री है। इसी तरह, यदि कोई विधिक व्यवसायी नियोक्ताओं के संघ या ऐसे संघों के संघ का अधिकारी है, तो धारा 36(4) में ऐसा कुछ भी नहीं है जो उसे अधिनियम की धारा 36(2) के प्रावधानों के तहत न्यायाधिकरण के सामने प्रस्तुत होने से रोक सके। फिर, किसी ट्रेड यूनियन का पदाधिकारी या उसकी कार्यकारिणी का सदस्य, भले ही वह एक विधिक व्यवसायी हो, पूर्व क्षमता में धारा 36(1) के तहत न्यायाधिकरण के समक्ष श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने का पात्र होगा। उपरोक्त दो मामलों में विधिक व्यवसायी नियोक्ता के मामले में एसोसिएशन के एक अधिकारी की हैसियत से और श्रमिकों के मामले में संघ के पदाधिकारी की हैसियत से उपस्थित होंगे, न कि विधिक की

हैसियत से। व्यवसायी. यदि कोई व्यक्ति धारा 36(1) और धारा 36(2) में निर्दिष्ट योग्यताएं पूरी करता है तो यह तथ्य कि कोई व्यक्ति विधिक व्यवसायी है, उसकी स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

16. यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि ट्रेड यूनियनों के पदाधिकारियों या नियोक्ता संघों के अधिकारियों के रूप में ऐसे विधिक व्यवसायियों की नियुक्ति के प्रयोजन की न्यायाधिकरण द्वारा जांच की कोई गुंजाइश नहीं है। जब कानून किसी अधिकार का प्रयोग करने के लिए अपेक्षित योग्यता प्रदान करता है, तो किसी दिए गए मामले में योग्यता की पूर्ति पक्षकार को उस योग्यता वाले व्यक्ति द्वारा न्यायाधिकरण के समक्ष प्रतिनिधित्व करने का अधिकार देगी। ये योग्यताएं कैसे और किन परिस्थितियों में प्राप्त की गई हैं, यह अधिनियम की धारा 36(1) और धारा 36(2) के तहत प्रतिनिधित्व के लिए एक आवेदन पर विचार करते समय न्यायाधिकरण द्वारा विचार करने के लिए प्रासंगिक मामले नहीं होंगे। एक बार न्यायाधिकरण के समक्ष उपस्थित होने से पहले धारा 36(1) और धारा 36(2) के तहत योग्यताएं पूरी हो जाती हैं, तो कानून के तहत मामले को आगे बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है ताकि यह पता लगाया जा सके कि नियुक्तियां अधिनियम की धारा 36(4) के उल्लंघन में हैं या नहीं। नियुक्ति के प्रयोजन को न्यायाधिकरण के समक्ष मुद्दा नहीं बनाया जा सकता।

अतः, विधिक स्थिति स्पष्ट है कि यदि कोई विधिक व्यवसायी नियोक्ताओं के संघ या ऐसे संघों के संघ का अधिकारी है, तो आई.डी. अधिनियम की धारा 36, उप-धारा (4) उसे न्यायालय के सामने प्रस्तुत होने से नहीं रोकती है। यह विधिक स्थिति कर्मकार पक्ष पर भी समान रूप से लागू होगी। माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया कि नियोक्ता संघ के पदाधिकारी के रूप में ऐसे विधिक व्यवसायी की नियुक्ति के प्रयोजन की न्यायाधिकरण द्वारा जांच की कोई गुंजाइश नहीं है।

उपरोक्त निर्णय पर भरोसा किया गया है और न केवल इस न्यायालय द्वारा एकलपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 191/1986, में पारित आदेश दिनांक 24.02.1987 सहित निर्णयों की श्रृंखला में लागू किया गया है। जयपुर गोल्डन ट्रांसपोर्ट कंपनी बनाम औद्योगिक न्यायाधिकरण और अन्य तथा इस न्यायालय द्वारा समय-समय पर दिए गए विभिन्न निर्णयों में भी।

इस विधिक स्थिति पर औद्योगिक न्यायाधिकरण ने अपने आदेश दिनांक 29.08.2012 में विस्तार से विचार किया था, लेकिन उनमें से किसी पर भी विद्वान एकलपीठ द्वारा विचार नहीं किया गया है, न ही इस संबंध में निष्कर्ष का पता लगाया गया

है। अतः, इस संबंध में विद्वान एकलपीठ के निष्कर्ष को कानून में कायम नहीं रखा जा सकता है।

26. विद्वान एकलपीठ ने अपने आदेश के पैरा 35 में, कहा है कि औद्योगिक न्यायाधिकरण ने अपने आदेश दिनांक 14.09.2012 के तहत आई.डी. अधिनियम की धारा 33(2)(ख) के तहत आवेदन को मंजूरी दे दी है, और जांच को प्राकृतिक न्याय और निष्पक्षता के सिद्धांत के अनुरूप माना है। प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी की आपत्ति कि नियोक्ता का प्रतिनिधि एक विधिक रूप से योग्य व्यक्ति था, जबकि प्रत्यर्थी संख्या 1-रिट याचिकाकर्ता को एक अधिवक्ता नियुक्त करने की सुविधा नहीं दी गई थी और इसके अलावा एक अधिवक्ता नियुक्त करने की उनकी प्रार्थना को जांच अधिकारी द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। हालाँकि, उन आपत्तियों की यथार्थता, जिन पर औद्योगिक न्यायाधिकरण ने अपने आदेश दिनांक 14.09.2012 द्वारा विचार किया था, की जांच विद्वान एकलपीठ द्वारा नहीं की गई है। वास्तव में, इस संबंध में निष्कर्षों का पता नहीं लगाया गया है। इस संबंध में, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि पहले औद्योगिक न्यायाधिकरण ने एक प्रारंभिक मुद्दा तैयार किया था कि क्या जांच निष्पक्ष और उचित थी और दिनांक 14.06.2006 के आदेश के तहत यह माना गया था कि जांच निष्पक्ष और उचित थी। उस आदेश को चुनौती नहीं दी गई. इसके बाद, औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा 03.02.2007 को मंजूरी देते हुए अंतिम आदेश पारित किया गया था, उस आदेश को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी और इस न्यायालय ने एकलपीठ में पारित आदेश दिनांक 13.06.2012 के तहत यह आदेश दिया था। सिविल रिट याचिका संख्या 1012/2007 ने मामले को फिर से औद्योगिक न्यायाधिकरण को भेज दिया। उस आदेश में भी, 14.06.2006 को पारित पूर्व आदेश जिसमें जांच को निष्पक्ष और उचित बताया गया था, पर चर्चा नहीं की गई, इसे कानून की दृष्टि से खराब तो बिल्कुल भी नहीं माना गया। किसी भी स्थिति में, मामला औद्योगिक न्यायाधिकरण को वापस भेजे जाने के बाद, विस्तृत विचार-विमर्श के बाद औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा फिर से दिनांक 14.09.2012 को आदेश पारित किया गया। अपने आदेश के पैरा 20 में, औद्योगिक न्यायाधिकरण ने, विभागीय जांच कार्यवाही में ऑर्डर शीट की सूक्ष्म जांच के बाद, यह निष्कर्ष दर्ज किया कि जांच अधिकारी द्वारा श्री मूलचंद सैनी को अपने प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त करने की प्रार्थना को अस्वीकार करने का कामगार

का मामला किसी भी आदेश से प्रतिबिंबित नहीं होता है। श्रमिक की दूसरी आपत्ति यह थी कि उसने श्री आर.सी. सक्सेना की नियुक्ति पर आपत्ति जताई थी। प्रबंधन के प्रतिनिधि के रूप में पर भी विचार किया गया है और यह माना गया है कि अपने प्रतिनिधित्व का निर्णय लेना प्रबंधन का काम है और कर्मचारी इस तरह के विकल्प पर आपत्ति नहीं कर सकता है। प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी की आगे की दलील कि प्रबंधन का प्रतिनिधित्व एक विधिक रूप से प्रशिक्षित अधिकारी द्वारा किया जाता है, लेकिन दोषी श्रमिक को अपने मामले का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक विधिक व्यवसायी की नियुक्ति से वंचित कर दिया जाता है, जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होगा, इसे भी ध्यान में रखा गया है। यह नोट किया गया है कि प्रबंधन ने अंततः श्री एस.पी. सिन्हा को नियुक्त किया था और उसके बाद, श्री आर.सी. सक्सेना को इसके प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया गया था, लेकिन कर्मचारी का यह रुख नहीं है कि उनमें से कोई भी विधिक व्यवसायी था। हालाँकि, यह कहा गया है कि श्री आर.सी. सक्सेना कानून के अच्छे जानकार हैं। औद्योगिक न्यायाधिकरण ने स्पष्ट रूप से एक निष्कर्ष दर्ज किया है कि जांच कार्यवाही के आदेश-पत्र और अन्य रिकॉर्ड से, यह कहीं भी प्रतिबिंबित नहीं होता है कि प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी ने कभी अपने प्रतिनिधि के रूप में एक अधिवक्ता की नियुक्ति के लिए आवेदन किया था। ये स्पष्ट निष्कर्ष, जिन्हें औद्योगिक न्यायाधिकरण ने अपने आदेश दिनांक 14.09.2012 में दर्ज किया था, विद्वान एकलपीठ द्वारा नहीं देखे गए हैं। इस पहलू पर प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी का केवल तर्क दर्ज किया गया है और उसके बाद इस पहलू पर कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है। अतः, यह पहलू कि प्रबंधन को एक विधिक व्यवसायी को नियुक्त करने की अनुमति दी गई थी, लेकिन प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी द्वारा एक विधिक व्यवसायी को अपने प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त करने की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया था, तथ्यात्मक रूप से गलत है और रिकॉर्ड से सामने नहीं आया है।

27. विद्वान एकलपीठ द्वारा आदेश के पैरा 35 में एक और आपत्ति का उल्लेख किया गया है कि हालांकि, जांच अधिकारी एक अधिवक्ता था और अतः, उसने जांच को दूषित कर दिया, इसे भी विद्वान औद्योगिक न्यायाधिकरण ने अपने आदेश दिनांक 14.09.2012 के पैरा 21 में विशेष रूप से निपटाया है और **बीको लॉरी लिमिटेड और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य, 2009 एलएलआर पेज 1057** के मामले में माननीय उच्चतम

न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए माना गया है कि एक अधिवक्ता की नियुक्ति, भले ही वह कंपनी का अधिवक्ता हो, जांच को प्रभावित नहीं करता है। इस संबंध में सरन मोटर्स प्राइवेट लिमिटेड, **नई दिल्ली बनाम विश्वनाथ और अन्य, 1964, खंड 9, एफएलआर पृष्ठ 7** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के एक और निर्णय पर भी भरोसा किया गया है। इन दो निर्णयों पर विचार करने पर, प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी द्वारा भरोसा किए गए निर्णय को अलग किया गया है।

विधिक स्थिति, जैसाकि विद्वान औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा जांच की गई है और जैसाकि **बायको लॉरी लिमिटेड और अन्य (सुप्रा.)** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया है, स्पष्ट रूप से मानता है कि ऐसे मामले में, जांच ख़राब नहीं होगी। औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज किए गए इस स्पष्ट निष्कर्ष का विद्वान एकलपीठ द्वारा भी अध्ययन नहीं किया गया है।

28. एक अन्य आपत्ति कि कंपनी के स्थायी आदेशों की प्रति प्रदान नहीं की गई थी, उस पर भी औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा आदेश के पैरा 22 में विचार किया गया है और जांच के आदेश पत्रों के अवलोकन के बाद तथ्य का एक स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किया गया है। कार्यवाही के अनुसार स्थायी आदेशों की प्रति पहले ही नोटिस बोर्ड पर उपलब्ध करा दी गई है और कर्मचारी को इससे अवगत करा दिया गया है। इसके अलावा जांच कार्यवाही की ऑर्डर शीट का जिक्र करते हुए, विद्वान औद्योगिक न्यायाधिकरण ने दर्ज किया है कि जांच के दौरान स्थायी आदेशों का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किया गया था और इसकी सामग्री को कर्मचारी को भी समझाया गया था।

29. इस प्रकार, सभी आपत्तियां, जो प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी द्वारा जांच की औचित्य और निष्पक्षता पर हमला करने के लिए ली गई थीं, औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा 14.09.2012 के अपने आदेश में विधिवत जांच की गई थी और उन निष्कर्षों को भंग नहीं किया गया था। आक्षेपित आदेश में एकलपीठ का पक्ष लिया गया।

30. अपने आदेश दिनांक 14.09.2012 के पैरा 23 में, औद्योगिक न्यायाधिकरण ने जांच कार्यवाही के अवलोकन के बाद स्पष्ट रूप से एक निष्कर्ष दर्ज किया कि दोषी कामगार को आरोप-पत्र दिया गया था, उसने अपना उत्तर दायर किया, उसके बाद दोनों पक्षों को साक्ष्य

प्रस्तुत करने और गवाहों से जिरह करने का अवसर दिया गया। विभिन्न तिथियों पर कर्मकार की ओर से उसका प्रतिनिधि उपस्थित हुआ तथा पूछताछ की कई तिथियों पर प्रत्यर्थी क्रमांक 1-कर्मचारी स्वयं उपस्थित हुआ। इस तरह के विचार पर, विद्वान न्यायाधिकरण एक स्पष्ट निष्कर्ष पर पहुंचा है कि जांच निष्पक्ष और उचित थी। औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा दिनांक 14.06.2006 के आदेश के तहत पहले भी यही कहा गया था।

31. भले ही औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज किए गए किसी भी निष्कर्ष का विद्वान एकलपीठ द्वारा पता नहीं लगाया गया था, विद्वान एकलपीठ ने अपने आदेश के पैरा 36 में दर्ज किया है कि पूरी कार्यवाही अंतर्निहित द्वेष के कारण रिट याचिकाकर्ता-कर्मचारी के विरूद्ध शुरू की गई थी और वर्ष 1981 में उनकी पूर्व सेवा-समाप्ति से संबंधित उनके द्वारा शुरू की गई पूर्व कार्यवाही के कारण पूर्वाग्रह विकसित हुआ। एक बार औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा विभिन्न मुद्दों पर दर्ज किए गए निष्कर्ष, जो जांच की निष्पक्षता, औचित्य और वैधता से संबंधित थे, निष्कर्ष कि जांच द्वेष का नतीजा थी और पक्षपात बिना किसी आधार के था। विद्वान एकलपीठ इस तथ्य से प्रभावित हैं कि दोनों पक्षों द्वारा कई कार्यवाही की गईं और पक्षकारों के बीच लंबे समय तक मुकदमा चला, सबसे पहले वर्ष 1981 में सेवा-समाप्ति की वैधता के संबंध में और विभिन्न स्तरों पर उस विवाद के लंबित रहने के दौरान, प्रत्यर्थी संख्या 1- कर्मकार को फिर से आरोप-पत्र जारी किया गया, जिसके कारण अंततः 08.04.1992 को उसकी बर्खास्तगी हो गई। इस तरह के विचारों पर और दिनांक 14.09.2012 के आदेश के तहत दर्ज किए गए औद्योगिक न्यायाधिकरण के निष्कर्षों की यथार्थता और वैधता के संबंध में कोई भी निष्कर्ष दर्ज किए बिना, पक्षपात और द्वेष के प्रभाव के साथ-साथ उत्पीड़न के आधार पर आदेश को अपास्त कर दिया गया है क्योंकि पहले कामगार की सेवा समाप्त कर दी गई और फिर उसे बहाल करने का निर्देश दिया गया। अतः, हम यह मानने के इच्छुक हैं कि आदेश के पैरा 36 और 37 में विद्वान एकलपीठ द्वारा दर्ज किए गए ऐसे निष्कर्ष उचित और विधिक रूप से अस्थिर नहीं हैं।

32. प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी ने कई निर्णयों का हवाला दिया है, जो दस्तावेजों की आपूर्ति न होने के कारण प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन, आई.डी. अधिनियम की धारा 33(2)(ख) के तहत अनुमोदन की विधिक आवश्यकता से संबंधित हैं। दोषी कर्मचारी को विधिक व्यवसायी नियुक्त करने की अनुमति देने से इनकार करने का प्रभाव, जबकि

नियोक्ता विधिक रूप से प्रशिक्षित कर्मियों को नियुक्त करता है और बकाया वेतन का पात्र है। हालाँकि, दर्ज किए गए निष्कर्षों के मद्देनजर, प्रत्यर्थी संख्या 1 को अपने मामले के समर्थन में इन निर्णयों से कोई सहायता नहीं मिलती है, एक बार यह माना गया है कि जांच निष्पक्ष और उचित थी, दस्तावेज प्रदान किए गए थे और अन्य सभी पहलू, जिनका यहां ऊपर वर्णन किया गया है सुनवाई का अवसर प्रदान किया गया था।

33. भले ही प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी द्वारा एक तर्क उठाया गया है कि आवेदन आई.डी. अधिनियम की धारा 33(1)(ख) के तहत दायर किया जाना चाहिए था न कि आई.डी. की धारा 33(2)(ख) के तहत अधिनियम, हमने पाया कि औद्योगिक न्यायाधिकरण ने अपने आदेश दिनांक 14.09.2012 के तहत यह निष्कर्ष दर्ज किया कि आवेदन आई.डी. अधिनियम की धारा 33(2)(ख) के तहत सही ढंग से दायर किया गया है। हालाँकि, विद्वान एकलपीठ के समक्ष, यह मुद्दा न तो उठाया गया था, और न ही विद्वान एकलपीठ ने औद्योगिक न्यायाधिकरण के निष्कर्ष को उलटते हुए इस मुद्दे पर कोई निष्कर्ष दर्ज किया है। अतः, हम उस दृष्टिकोण से आदेश की वैधता की जांच करने के इच्छुक नहीं हैं। किसी भी मामले में, एक बार जब हम स्वयं जांच की निष्पक्षता के पूरे पहलू की जांच कर लेते हैं और संतुष्ट हो जाते हैं कि जांच कार्यवाही में कोई अनौचित्य या अनुचितता नहीं थी, तो उस मुद्दे पर देर से विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

34. अंत में, हम पाते हैं कि रिट याचिका में प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी ने भी राहत का दावा किया है कि खंडपीठ सिविल विशेष अपील (रिट) संख्या 831/2002 में पारित तीसरे पंचाट दिनांक 03.09.2003, अधिसूचना दिनांक 17.01.2006 और आदेश दिनांक 18.04.2006 के अनुपालन का आदेश दिया जाए। इस संबंध में, यह उल्लेख करना पर्याप्त है कि 01.08.1985 को प्रथम पंचाट पारित होने के बाद, किसी अंतरिम आदेश के अभाव में, कर्मचारी को 19.02.1986 को सेवा में बहाल कर दिया गया था। एल.सी.सी. संख्या 49/2006 के मामले में श्रम न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.08.2007 से यह भी पता चलता है कि बकाया वेतन का भुगतान किया गया था। खंडपीठ में इस न्यायालय की खंडपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 1996/2003 एवं खंडपीठ क्रमशः सिविल समीक्षा याचिका संख्या 25/2006 द्वारा पारित आदेश दिनांक 14.02.2006 और 18.04.2006 के तहत यह माना गया है कि अंतिम पंचाट दिनांक 03.09.2003 (वर्ष 1981 में पहली सेवा-

समाप्ति से संबंधित) का अनुपालन अपीलार्थी-कंपनी द्वारा पहले ही किया जा चुका है।

35. उपरोक्त विचारों और विभिन्न मुद्दों पर चर्चा के परिणामों को ध्यान में रखते हुए, हम विद्वान एकलपीठ द्वारा पारित दिनांक 30.10.2018 के आदेश को अपास्त करने और तदनुसार, प्रत्यर्थी संख्या 1-कर्मचारी द्वारा दायर रिट याचिका को अपास्त करने के इच्छुक हैं।

36. तद्नुसार अपील स्वीकार की जाती है। अंतरिम आवेदन, यदि कोई हो, का निपटान हो गया है।

(फरजंद अली), न्यायमूर्ति **(मनिन्द्र मोहन श्रीवास्तव), न्यायमूर्ति**

MANOJ NARWANI///

टिप्पणी: इस निर्णय का हिन्दी अनुवाद निविदा फर्म **राजभाषा सेवा संस्थान** द्वारा किया गया है, जिसे फर्म के निदेशक डॉ. वी. के. अग्रवाल, द्वारा मान्य और सत्यापित किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन व कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।